प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय: बिलासपुर

युगलपीठ: माननीय श्री सतीश के. अग्निहोत्री, न्यायमूर्ति

माननीय श्री प्रशांत कुमार मिश्रा, न्यायमूर्ति

रिट याचिका क्रमांक 3758/2000

याचिकाकर्ता अनवर अहमद सिद्दीकी

विरुद्ध

उत्तरवादीगण कुलपति, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय एवं अन्य

विचारार्थ हेतु आदेश।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

सही/-

सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायमूर्ति

माननीय श्री प्रशांत कुमार मिश्रा, न्यायमूर्ति

सही/-

प्रशांत कुमार मिश्रा

न्यायमूर्ति

आदेश की उद्घोषणा के लिए सूचीबद्ध करें। दिनाँक: 08-01-2010

सही/-

सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायमूर्ति

छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय: बिलासपुर

युगलपीठ: माननीय श्री सतीश के. अग्निहोत्री, न्यायमूर्ति

माननीय श्री प्रशांत कुमार मिश्रा, न्यायमूर्ति

रिट याचिका क्रमांक 3758/2000

याचिकाकर्ता अनवर अहमद सिद्दीकी

विरुद्ध

उत्तरवादीगण कुलपति, इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय एवं अन्य

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

(भारत के संविधान के अनुच्छेद 226/227 के अधीन प्रस्तुत रिट याचिका)

उपस्थित:- याचिकाकर्ता की ओर से – श्री के.ए. अंसारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सह श्री आर. एल. बाजपेयी, अधिवक्ता।

उत्तरवादी की ओर से – श्री जे.डी. बाजपेयी, अधिवक्ता।

आदेश

(दिनांक 08 जनवरी, 2010 को पारित किया गया)

माननीय श्री सतीश के. अग्निहोत्री, न्यायमूर्ति, द्वारा

1. इस याचिका के माध्यम से, याचिकाकर्ता दिनांक 12-6-2000 (अनुलग्नक - पी/6) को उत्तरवादी प्राधिकारियों द्वारा पारित उस आदेश की वैधानिकता एवं वैधता को चुनौती देता है, जिसके द्वारा याचिकाकर्ता को सेवा-निवृत्ति की आयु 60 वर्ष पूर्ण करने के आधार पर दिनांक 30-6-2000 की प्रभावी तिथि से सेवानिवृत्त कर दिया गया।

2. निर्विवाद तथ्य, संक्षेप में, जैसा कि याचिकाकर्ता द्वारा प्रस्तुत किया गया है, इस प्रकार हैं कि याचिकाकर्ता उत्तरवादी इंदिरा गांधी कृषि विश्वविद्यालय (संक्षेप में "उत्तरवादी विश्वविद्यालय") में पुस्तकालयाध्यक्ष (वर्ग/श्रेणी-I कर्मचारी) के पद पर कार्यरत था। याचिकाकर्ता सेवा-निवृत्ति की आयु के प्रश्न पर विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (संक्षेप में "यूजीसी") द्वारा दिनांक 24-12-1998 को सभी विश्वविद्यालयों के कुलपतियों तथा समस्त राज्य/संघ राज्य क्षेत्रों के शिक्षा सचिवों को संबोधित प्रपत्र के आधार पर शिक्षकों के साथ समानता का दावा करता है। याचिकाकर्ता दिनांक 12-6-2000 (अनुलग्नक - पी/6) को पारित उस आदेश को चुनौती देता है, जिसके तहत याचिकाकर्ता को सेवा-निवृत्ति की आयु 60 वर्ष पूर्ण करने के आधार पर दिनांक 30-6-2000 की प्रभावी तिथि से सेवानिवृत्त कर दिया गया।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

3. याचिकाकर्ता के अधिवक्ता श्री अंसारी, वरिष्ठ अधिवक्ता, सह श्री बाजपेयी, अधिवक्ता, यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि याचिकाकर्ता का दावा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा जारी प्रपत्र दिनांक 24-12-1998 (अनुलग्नक - पी/1) तथा उत्तरवादी विश्वविद्यालय द्वारा जारी अधिसूचना दिनांक 18-3-1999 पर आधारित है। यदि कोई अधिकारी शिक्षण कार्य में संलग्न है, तो उसके द्वारा धारण किए गए पद का पदनाम अप्रासंगिक/सारहीन है। अतः, याचिकाकर्ता 62 वर्ष की आयु पूर्ण करने तक, अर्थात 30-6-2002 तक, सेवा में कार्य करने का अधिकारी है।

4. इसके विपरीत, श्री जे.डी. बाजपेयी, उत्तरवादी विश्वविद्यालय की ओर से प्रस्तुत विद्वान् अधिवक्ता, यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि पुस्तकालयाध्यक्ष के संबंध में सेवा-निवृत्ति से संबंधित कोई सेवा लाभ प्रदान नहीं किया गया है, अतः याचिकाकर्ता की सेवा-निवृत्ति की आयु 60 वर्ष ही है। दिनांक 3-3-2000 की अधिसूचना (अनुलग्नक -आर/2) के माध्यम से भी यह स्पष्ट किया गया है कि पुस्तकालयाध्यक्षों को शिक्षक नहीं माना गया है।

5. हमने पक्षकारों की ओर से प्रस्तुत विद्वान् अधिवक्ताओं को सुना है तथा अभिवचनों और उनसे संलग्न दस्तावेजों का परिशीलन किया है।

6. याचिकाकर्ता द्वारा दिनांक 24-12-1998 के प्रपत्र पर लिया गया अवलंब अनुचित है, क्योंकि यह केवल उन विश्वविद्यालयों पर लागू होता है जो किसी केन्द्रीय अधिनियम, प्रांतीय अधिनियम अथवा राज्य अधिनियम के अधीन स्थापित या समाविष्ट किए गए हैं; तथा प्रत्येक संस्थान, जिसमें किसी विश्वविद्यालय से संबद्ध अथवा उसके घटक महाविद्यालय शामिल हैं, जो विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 (संक्षेप में "अधिनियम, 1956") की धारा 2 के खंड (च) के अधीन संबंधित विश्वविद्यालय से परामर्श कर यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त हों; और प्रत्येक संस्थान जो उक्त अधिनियम, 1956 की धारा 3 के अधीन विश्वविद्यालय घोषित किया गया हो, पर लागू होता है। कृषि विश्वविद्यालय/महाविद्यालय, अधिनियम, 1956 के उपबंधों के अधीन यूजीसी से संबद्ध या मान्यता प्राप्त नहीं हैं। अतः जब तक राज्य सरकार द्वारा पुस्तकालयाध्यक्ष की सेवा-निवृत्ति की आयु 62 वर्ष किए जाने की यूजीसी की अनुशंसा को स्वीकार नहीं किया जाता, तब तक यह कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के कर्मचारियों पर लागू नहीं होती। याचिकाकर्ता द्वारा उद्धृत पत्र दिनांक 12-3-1999 (अनुलग्नक -पी/2, पृष्ठ 15), जो उत्तरवादी विश्वविद्यालय के कुलपति को संबोधित है, में उल्लेख किया गया है कि संचालक मंडल द्वारा संविधि की धारा 9(3) और 9(4) के अधीन, अपनी 30वीं बैठक दिनांक 11-11-1998 में प्रस्तुत प्रस्ताव को कुलाधिपति द्वारा मंजूरी प्रदान की गई है। बैठक में पारित संचालक मंडल का यह प्रस्ताव केवल उन शिक्षकों के लिए सेवा-निवृत्ति की आयु बढ़ाने से संबंधित है, जिन्होंने न्यूनतम 20 वर्षों तक शिक्षक/शोधकर्ता के रूप में कार्य किया है और जो शिक्षा के विकास एवं विस्तार के कार्य में संलग्न रहे हैं। पुस्तकालयाध्यक्षों की सेवा-निवृत्ति की आयु बढ़ाए जाने का कोई भी प्रावधान उक्त प्रस्ताव में नहीं है जो कुलाधिपति द्वारा अनुमोदित किया गया था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

7. जहाँ तक याचिकाकर्ता की इस तर्क का प्रश्न है कि वह पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर कार्य करते हुए शिक्षण कार्य में भी संलग्न था, अभिलेखों के अवलोकन से यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को पुस्तकालयाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया गया था और इसके पश्चात ऐसा कोई ठोस सामग्री प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह संकेत मिले कि पुस्तकालयाध्यक्ष के

कार्य के अतिरिक्त वह न्यूनतम 20 वर्षों तक शिक्षण कार्य में भी संलग्न रहा हो। अतः, दिनांक 11-11-1998 को आयोजित संचालक मंडल की 30वीं बैठक में पारित वह संकल्प, जिसे कुलाधिपति द्वारा अनुमोदन प्रदान की गई थी, वर्तमान प्रकरण के तथ्यों पर लागू नहीं होता।

8. इस तर्क के समर्थन में, विद्वान् अधिवक्ता द्वारा अनुलग्नक - पी/3 के अनुलग्नक - 1 (पृष्ठ 21) पर यह कहते हुए आश्रय लिया गया है कि कृषि शिक्षा में वेतनमान, वेतन निर्धारण तथा अन्य मापदंडों का विनियमन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा किया जाता है, यह कथन तथ्यात्मक रूप से सही नहीं है, क्योंकि संशोधित वेतनमान कृषि विभाग द्वारा जारी किए गए थे। इसके अतिरिक्त, सेवा-निवृत्ति की आयु बढ़ाए जाने का कोई उल्लेख इन प्रपत्रों में नहीं है, और अनुलग्नक - पी/3 के अनुलग्नक - 1 (पृष्ठ 23) के अंत में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि दिनांक 24-12-1998 का प्रपत्र राज्य कृषि विश्वविद्यालयों पर तब तक लागू नहीं होगा जब तक कि उसे राज्य सरकार द्वारा अंगीकृत न किया जाए। वेतनमान में संशोधन राज्य सरकार द्वारा दिनांक 20-10-1999 (अनुलग्नक - पी/4) को विधिवत रूप से स्वीकार किया गया था। जहाँ तक पत्र दिनांक 15-2-1972 (अनुलग्नक - पी/9) का संबंध है, जिसमें कहा गया है कि पुस्तकालयाध्यक्ष को पाठ्यक्रम से जुड़ना होगा, यह याचिकाकर्ता की सेवा की प्रकृति में परिवर्तन नहीं करता, क्योंकि पाठ्यक्रम से जुड़ाव का अर्थ यह नहीं है कि पुस्तकालयाध्यक्ष द्वारा न्यूनतम 20 वर्षों तक शिक्षण कार्य किया जाना था। इसी प्रकार, 15-3-1974 दिनांकित पत्र (अनुलग्नक - पी/10) जिसमें याचिकाकर्ता को पुस्तकालयाध्यक्ष पाठ्यक्रम का अध्ययन कर रहे छात्रों को पढ़ाने की अनुमति दी गई थी, वह भी याचिकाकर्ता के न्यूनतम 20 वर्षों तक शिक्षण कार्य के माँग की पूर्ति नहीं करता, जिससे वह शिक्षकों के समान सेवा-निवृत्ति की आयु का लाभ प्राप्त कर सके। 3-3-2000 दिनांकित पत्र (अनुलग्नक - आर/2) में स्पष्ट रूप से यह उल्लेख किया गया है कि पुस्तकालयाध्यक्ष शिक्षक नहीं है, और इसलिए वे सेवा-निवृत्ति की आयु बढ़ाए जाने के हकदार नहीं हैं।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

9. याचिकाकर्ता द्वारा 16-11-1999 दिनांकित एक अतिरिक्त पत्र (अनुलग्नक - पी/21) प्रस्तुत किया गया है, जो भारत सरकार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय, नई दिल्ली के उप सचिव द्वारा जारी किया गया है, जिसमें पुस्तकालयाध्यक्षों की सेवा-निवृत्ति की आयु को 62

वर्ष किए जाने का उल्लेख किया गया है। किन्तु उक्त पत्र कृषि विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों पर लागू नहीं होता है, क्योंकि कृषि विश्वविद्यालय कृषि विभाग के अधीन संचालित होते हैं। मानव संसाधन विकास मंत्रालय, कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के संबंध में कोई अनुशंसा नहीं करता है। अन्यथा भी, 16-11-1999 दिनांकित यह पत्र (अनुलग्नक - पी/21) विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) को संबोधित है, जिसमें यूजीसी से संबद्ध एवं मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों में कार्यरत पुस्तकालयाध्यक्ष, उप पुस्तकालयाध्यक्ष तथा सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष की सेवा-निवृत्ति की आयु में वृद्धि किए जाने का केवल एक सुझाव प्रस्तुत किया गया है।

10. याचिकाकर्ता द्वारा यह अभिवाक नहीं किया गया है कि उत्तरवादी विश्वविद्यालय यूजीसी से संबद्ध और मान्यता प्राप्त है। इस तथ्य की पुष्टि हेतु कोई सामग्री भी प्रस्तुत नहीं की गई है कि उत्तरवादी विश्वविद्यालय यूजीसी से संबद्ध और मान्यता प्राप्त है। यह अवश्य प्रस्तुत किया गया है कि एक प्रकरण में एक पुस्तकालयाध्यक्ष को 62 वर्ष की आयु पूर्ण करने पर सेवानिवृत्त किया गया था। किन्तु एकमात्र उदाहरण कानून/विधि नहीं बनाता।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

11. भारत के संविधान की सप्तम अनुसूची में, सूची-I (संघ सूची) की प्रविष्टियाँ क्रमांक 62, 63, 64, 65 तथा 66 शैक्षणिक संस्थानों से संबंधित हैं। सूची-III (समवर्ती सूची) की प्रविष्टि क्रमांक 25 में शिक्षा, जिसमें तकनीकी शिक्षा और चिकित्सीय शिक्षा तथा विश्वविद्यालय, श्रमिकों का व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण सम्मिलित है, का प्रावधान है। कृषि शिक्षा न तो संघ सूची में है और न ही समवर्ती सूची में, बल्कि यह सूची-II (राज्य सूची) की प्रविष्टि क्रमांक 14 में सम्मिलित है, अर्थात् कृषि, जिसमें कृषि शिक्षा एवं अनुसंधान, कीटों से सुरक्षा तथा पौधों के रोगों की रोकथाम भी सम्मिलित है।

12. उपरोक्त वर्णित कारणों के आधार पर यह स्पष्ट है कि संसद न तो इस विषय में सक्षम है, और न ही उसने कोई ऐसा विधि पारित किया है तथा न ही कोई ऐसा आयोग स्थापित किया है, जो कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं पुस्तकालयाध्यक्षों के वेतनमान तथा योग्यता को विनियमित एवं निर्धारित करता हो। यह राज्य विधायिका अथवा राज्य सरकार का अधिकार क्षेत्र है कि वह कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के शिक्षकों एवं कर्मचारियों की सेवा शर्तों, जिसमें सेवा-निवृत्ति की आयु भी सम्मिलित है, को विनियमित करे।

13.माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने **बी. भरत कुमार एवं अन्य विरुद्ध उस्मानिया विश्वविद्यालय एवं अन्य[1]** [1]के प्रकरण में निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

> "19. विद्वान अधिवक्ता द्वारा सेवा-निवृत्ति की आयु को 60 अथवा 62 वर्ष किए जाने की वांछनीयता के पक्ष में विस्तार से तर्क प्रस्तुत किया गया। हम पुनः यह दोहराते हैं कि सेवा-निवृत्ति की आयु क्या होनी चाहिए, यह नीति निर्धारित करना इस न्यायालय का कार्यक्षेत्र नहीं है, क्योंकि ऐसा करने से हम विधायिका की नीति-निर्धारण प्रक्रिया की युक्तिसंगतता के क्षेत्र में अनावश्यक हस्तक्षेप करेंगे, जो न्यायालय की मर्यादा के अनुरूप नहीं है। यदि राज्य सरकार, अपने विधिसम्मत विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, यह निर्णय लेती है कि सेवा-निवृत्ति की आयु को 60 अथवा 62 वर्ष तक न बढ़ाया जाए और उसे यथावत रखा जाए, तो राज्य सरकार ऐसा करने के लिए पूर्णतः सक्षम है तथा यह निर्णय न्यायोचित था।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

14.दिनांक 24-12-1998 के ज्ञापन (अनुलग्नक - पी/1) में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि संशोधित वेतनमान, जिसे अन्य विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों के लिए यूजीसी के प्रावधानों के अधीन स्वीकार किया गया है, उसे राज्य सरकार द्वारा कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के लिए भी अंगीकृत किया जा सकता है। अतः यूजीसी द्वारा की गई कोई भी अनुशंसा, जब तक कि राज्य सरकार द्वारा उसे कृषि विश्वविद्यालयों के शिक्षकों एवं पुस्तकालयाध्यक्षों के संदर्भ में स्वीकार नहीं किया जाता, बाध्यकारी नहीं होगी। इस प्रकार, याचिकाकर्ता (जो कि एक पुस्तकालयाध्यक्ष है) द्वारा कृषि विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के साथ सेवा-निवृत्ति की आयु के संदर्भ में समानता का जो दावा किया गया है, वह आधारहीन है।

15.यहाँ प्रस्तुत निर्णय **मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य विरुद्ध प्रमोद भारतीया एवं अन्य[22]** [(1993) 1 एससीसी 539] में सर्वोच्च न्यायालय ने उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत व्याख्याताओं द्वारा तकनीकी विद्यालयों के व्याख्याताओं के साथ वेतन और सेवा शर्तों में समानता के दावे पर विचार करते हुए निम्नानुसार टिप्पणी की गई है:-

---

[1](2007) 11 SCC 58

[2](1993) 1 SCC 539

"12. उपर्युक्त प्रस्तुत सामग्री यह दर्शाती है कि— (क) उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में कार्यरत व्याख्याताओं और तकनीकी विद्यालयों में कार्यरत गैर-तकनीकी व्याख्याताओं के लिए निर्धारित शैक्षणिक योग्यताएँ समान हैं; (ख) दोनों श्रेणियों के व्याख्याताओं की सेवा शर्तें समान हैं; और (ग) दोनों प्रकार के विद्यालयों की स्थिति/दर्जा भी समान है। किन्तु, इस संदर्भ में यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि यह आरोप एवं/अथवा सामग्री स्पष्ट रूप से अनुपस्थित है कि दोनों श्रेणियों के व्याख्याताओं के कर्तव्यों और जिम्मेदारियों में समानता है। और भी, ऐसा कोई ठोस आरोप या प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया है जिससे यह कहा जा सके कि गुणात्मक दृष्टि से वे समान कार्य करते हैं। केवल यह कहना पर्याप्त नहीं है कि शैक्षणिक योग्यताएँ समान हैं, या यह कि विद्यालयों का दर्जा समान है। यह भी कहना पर्याप्त नहीं है कि सेवा शर्तें समान हैं। सबसे अधिक महत्वपूर्ण और निर्णायक पहलू यह है कि क्या वे समान प्रकार के कर्तव्य, कार्य और उत्तरदायित्व निभाते हैं। इस संदर्भ में सामग्री का स्पष्ट अभाव दृष्टिगोचर होता है। चाहे हम मूल याचिका में किए गए शपथपूर्वक कथनों, या उसके साथ प्रस्तुत की गई सामग्री, अथवा प्रतिवाद-पत्र में किए गए शपथपूर्वक कथनों को देखें, या फिर एम.पी. नं. 2277/1985 में सरकार द्वारा दायर प्रतिवाद-पत्र में किए गए शपथपूर्वक कथनों को (जिस पर उत्तरवादी पक्ष के अधिवक्ता ने विशेष रूप से अवलंब लिया है), हमें कहीं भी ऐसा कोई स्पष्ट सामग्री नहीं मिलता जिससे यह सिद्ध हो कि दोनों श्रेणियों के व्याख्याताओं के कर्तव्य, कार्य एवं उत्तरदायित्व समरूप या समान हैं। इस संदर्भ में, " समान पारिश्रमिक अधिनियम, 1976 " की धारा 2 के खंड (ज) में प्रयुक्त परिभाषा — " समान कार्य या समान प्रकृति के कार्य " — का उल्लेख उपयुक्त होगा। उक्त अधिनियम संसद द्वारा इस उद्देश्य से अधिनियमित किया गया था (जैसा कि इस न्यायालय ने मैकिनॉन मैकेंज़ी विरुद्ध ऑड्री डी'कोस्टा मामले में इंगित किया है) कि संविधान के अनुच्छेद 39(घ) को लागू किया जा सके तथा 'समान मूल्य के कार्य के लिए पुरुष एवं महिला श्रमिकों को समान पारिश्रमिक' संबंधी सम्मलेन (जिसे सामान्यतः 'समान पारिश्रमिक सम्मलेन, 1951' कहा जाता है) के तहत उत्पन्न दायित्वों को पूरा किया जा सके, जिसे 29 जून, 1951 को अंगीकृत किया गया था और जिसका भारत एक हस्ताक्षरकर्ता है। उक्त सम्मलेन के अनुच्छेद 2 के अधीन हस्ताक्षरकर्ता राज्य बाध्य है कि वे उक्त नियम को लागू करने हेतु सभी उपायों को

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अपनाएं, जिसमें विधिक प्रक्रिया भी सम्मिलित है। उक्त अधिनियम उन प्रतिष्ठानों और नियोजनों पर लागू होता है जिन्हें अधिनियम की धारा 1(3) के अधीन केंद्र सरकार द्वारा अधिसूचित किया गया हो। यद्यपि उक्त अधिनियम मुख्य रूप से महिलाओं के विरुद्ध होने वाले भेदभाव को लक्षित करता है और यह उन नियोजनों या प्रतिष्ठानों पर लागू नहीं होता जिनसे वर्तमान उत्तरवादी संबद्ध हैं, तथापि 'पुरुषों और महिलाओं दोनों के लिए समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत को वैधानिक स्वरूप प्रदान करने हेतु बनाए गए अधिनियम में यह परिभाषा दी गई है, इसलिए इसकी सुसंगतता से इनकार नहीं किया जा सकता। धारा 2(ज) की परिभाषा इस प्रकार है:

> "समान कार्य या समान प्रकृति का कार्य" से ऐसा कार्य अभिप्रेत है जिसके संबंध में अपेक्षित कौशल, प्रयास और उत्तरदायित्व, समान कार्य परिस्थितियों में किसी पुरुष या महिला द्वारा किए जाने पर समान होते हैं और पुरुष के लिए अपेक्षित कौशल, प्रयास और उत्तरदायित्व तथा महिला के लिए अपेक्षित कौशल, प्रयास और उत्तरदायित्व के बीच अंतर, यदि कोई हो, नियोजन के निबंधनों और शर्तों के संबंध में व्यावहारिक रूप से महत्वपूर्ण नहीं है;"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

16. **हरियाणा राज्य एवं अन्य विरुद्ध चरणजीत सिंह एवं अन्य**[3] [3]के मामले में, सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:—

> "17 भगवान दास विरुद्ध हरियाणा राज्य" के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है कि यदि अस्थायी रूप से नियुक्त कर्मचारियों और नियमित कर्मचारियों के कार्य एवं कर्तव्य समान हैं, तो केवल चयन की प्रक्रिया में अंतर होने के कारण वेतन में भेदभाव नहीं किया जा सकता। यह भी अभिनिर्धारित किया गया है गया कि कार्य की समानता को सिद्ध करने का उत्तरदायित्व उस व्यथित कर्मचारी पर था जो वेतन की समानता का दावा करता है। हालांकि, हम इस विचार से सहमत नहीं हैं कि चयन की विधियों में अंतर होने पर भी वेतन में कोई अंतर नहीं किया जा सकता। जैसा कि जसमेर सिंह के मामले में सही रूप से अभिनिर्धारित किया गया है

[3](2006) 9 SCC 321

कि चयन समिति द्वारा योग्यता और वरिष्ठता को ध्यान में रखकर चयनित कर्मचारियों को उच्चतर वेतनमान दिया जा सकता है, क्योंकि उन्हें सक्षम प्राधिकरण द्वारा मूल्यांकन के बाद नियुक्त किया गया होता है, और ऐसे मामलों में उच्च वेतनमान को चुनौती नहीं दी जा सकती। जसमेर सिंह के निर्णय को तरुण के. रॉय के मामले में भी स्वीकार किया गया है।

19. प्रस्तुत प्राधिकरणों एवं पक्षकारों के तर्कों पर विचार करने के पश्चात् हमारा मत है कि जसमेर सिंह, तिलक राज, ओडिशा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय तथा तरुण के. रॉय के मामलों में जो विधि प्रतिपादित की गई है, वह सही है। निःसंदेह, 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत कोई अमूर्त सिद्धांत नहीं है और इसे न्यायालय में लागू कराया जा सकता है। परंतु समान वेतन केवल समान मूल्य के समान कार्य के लिए ही दिया जा सकता है। 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत प्रत्येक मामले में यांत्रिक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 14 तर्कसंगत वर्गीकरण की अनुमति देता है, जो उन नियुक्त/नियोजित व्यक्तियों के गुणों या विशेषताओं पर आधारित हो सकता है जिन्हें एक साथ समूहीकृत किया गया है, बनिस्पत उनके जो उस समूह में शामिल नहीं किए गए। निश्चित रूप से, ऐसे गुणों या विशेषताओं का उस उद्देश्य से तार्किक संबंध होना चाहिए जिसे प्राप्त करना अभिप्रेत है। सेवा संबंधी मामलों में, प्रशासनिक दक्षता को बढ़ावा देने के लिए वेतन निर्धारण हेतु योग्यता या अनुभव को वर्गीकरण का उपयुक्त आधार माना जा सकता है। रुकी हुई पदोन्नति की स्थिति से उत्पन्न ठहराव या निराशा से बचाने हेतु उच्चतर वेतनमान प्रदान करना भी वेतन में अंतर का एक स्वीकार्य कारण हो सकता है। यह तथ्य कि कोई व्यक्ति नियमित भर्ती प्रक्रिया से नहीं गुज़रा है, कुछ मामलों में अपने आप में एक भिन्नता उत्पन्न कर सकता है। यदि शैक्षणिक योग्यताएँ भिन्न हों, तो भी उक्त सिद्धांत (समान कार्य के लिए समान वेतन) लागू नहीं हो सकता। भले ही विभिन्न व्यक्ति समान कार्य करते हों, उनके कार्य की गुणवत्ता में अंतर हो सकता है। जहाँ व्यक्तियों का चयन चयन समिति द्वारा योग्यता के आधार पर, वरिष्ठता का यथोचित ध्यान रखते हुए किया गया हो, वहाँ ऐसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा मूल्यांकन के आधार पर प्रदत्त उच्चतर वेतनमान को चुनौती नहीं दी जा सकती। शैक्षणिक योग्यताओं में अंतर के आधार पर किया गया वर्गीकरण वेतनमान में भिन्नता को

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

उचित ठहराता है। केवल किसी व्यक्ति को नाममात्र 'बढ़ई' या 'कारीगर' कह देने मात्र से यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि वह नियमित सेवा में कार्यरत किसी अन्य बढ़ई या कारीगर के समान कार्य कर रहा है। कार्य की गुणवत्ता भिन्न हो सकती है और यहां तक कि सौंपे गए कार्य की प्रकृति भी अलग हो सकती है। यह केवल शारीरिक गतिविधि की तुलना का मामला नहीं है। 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत के अनुप्रयोग हेतु किसी कार्य की विभिन्न पक्षों की समीक्षा आवश्यक होती है। जिस कार्य में जितनी सटीकता और दक्षता अपेक्षित है, वह कार्य विशेष के अनुसार भिन्न हो सकती है। इसका मूल्यांकन केवल कार्य की मात्रा से नहीं किया जा सकता। विश्वसनीयता और उत्तरदायित्व के संदर्भ में गुणात्मक अंतर हो सकता है। कार्य के प्रकार समान हो सकते हैं, परंतु उत्तरदायित्व में अंतर कार्य को भिन्न बना देता है। अतः सामान्यतः इस सिद्धांत की अनुप्रयोगिता का मूल्यांकन और निर्धारण किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा किया जाना चाहिए। ये ऐसे विषय नहीं हैं जिनमें रिट अधिकारिता रखने वाले न्यायालय हल्के में हस्तक्षेप कर सकते है। सामान्यतः, जो पक्ष 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का दावा करता है, उससे इस संबंध में विवाद उठाना अपेक्षित होता है। किसी भी स्थिति में, जो पक्ष यह दावा करता है कि उसे समान वेतन मिलना चाहिए, उसे आवश्यक तथ्यात्मक कथन करना होता है तथा यह सिद्ध करना होता है कि सभी परिस्थितियाँ समान हैं। अतः, किसी न्यायालय द्वारा कोई भी निर्देश जारी करने से पहले, यह देखना अनिवार्य है कि आवश्यक कथन किए गए हैं और उनके समर्थन में प्रमाण भी प्रस्तुत है। यदि उच्च न्यायालय उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि कार्य की प्रकृति, गुणवत्ता तथा अन्य सभी सुसंगत कारक समान हैं, तो वह संबंधित रिट याचिका दायर करने की तिथि से समान वेतन का भुगतान किए जाने का निर्देश दे सकता है। परंतु इन सभी मामलों में, हमने देखा कि उच्च न्यायालय ने बिना किसी सुसंगत कारकों की जांच किए, केवल इस आधार पर निर्णय दे दिया कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत स्वतः लागू होता है।

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

17. **चरणजीत सिंह** (पूर्वोक्त) के मामले में प्रतिपादित सिद्धांत का समर्थन करते हुए उसका उल्लेख **एस.सी. चन्द्रा एवं अन्य विरुद्ध झारखंड राज्य एवं अन्य**[44] के मामले में किया गया है। इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:-

[4](2007) 8 SCC 279

"36. यह सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पूर्व से ही विधिपूर्वक स्थापित किया जा चुका है कि केवल इस आधार पर कि कार्य की प्रकृति समान है — यदि शैक्षणिक योग्यता, नियुक्ति की रीति/प्रकार, अनुभव और अन्य सुसंगत कारकों की अनदेखी की जाए — तो 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत लागू नहीं किया जा सकता। इस संबंध में देखें: पश्चिम बंगाल सरकार विरुद्ध तरुण के. रॉय।"

18. **पंजाब राज्य एवं अन्य विरुद्ध सुरजीत सिंह एवं अन्य**[55] के मामले में सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार टिप्पणी की है:

"24. अब यह विवाद या संदेह का विषय नहीं रहा कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' के सिद्धांत का लाभ दिए जाने के लिए कई कारकों पर विचार करना आवश्यक होता है — जैसे कि कार्य की समानता, कार्य का समान मूल्य, नियुक्ति का स्रोत और तरीका, समान सेवा वर्ग की पहचान, और पूर्णतः समरूपता आदि। सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही के एक निर्णय, भारत संघ एवं अन्य विरुद्ध महजबीन अख्तर में इस सिद्धांत को स्पष्ट रूप से निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है: (एससीसी पीपी.376-77, पैरा 19 और 24).

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

"19. यह प्रश्न सर्वोच्च न्यायालय के कई निर्णयों में विचाराधीन रहा, जहाँ स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकाला गया कि शैक्षणिक योग्यताएँ, कर्तव्यों की प्रकृति, उत्तरदायित्व का स्वरूप, भर्ती की प्रक्रिया की प्रकृति आदि जैसे अनेक कारक वेतनमान के निर्धारण में समानता तय करने हेतु सुसंगत हैं। (देखें: वित्त विभाग विरुद्ध प. बंगाल, पंजीकरण सेवा संघ; उत्तर प्रदेश राज्य विरुद्ध जे.पी. चौरसिया; भारत संघ विरुद्ध प्रदीप कुमार डे; तथा हरियाणा राज्य विरुद्ध हरियाणा सिविल सचिवालय वैयक्तिक कर्मचारी संघ)

24. इस मामले के तथ्यों को देखते हुए हमारा मत है कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत यहाँ लागू नहीं होता। स्थिति भिन्न हो सकती थी यदि वेतनमान शैक्षणिक योग्यताओं, कार्य की प्रकृति तथा अन्य सुसंगत तथ्यों के आधार पर निर्धारित किए गए होते। हम यह भी मानते हैं कि

[5](2009) 9 SCC 514

सामान्यतः भिन्न विभागों में कार्यरत कर्मचारियों के वेतनमान समान माने जाने चाहिए, और एकसमान वेतन की सिफारिश की जानी चाहिए। तथापि, उत्तरवादी ने प्रतिनियुक्ति का विकल्प नहीं चुना और सरकारी सेवा में अधिशेष के रूप में बने रहने का विकल्प चुना। उन्हें राष्ट्रीय आधुनिक कला संग्रहालय में पुस्तकालयाध्यक्ष के रूप में सूचीबद्ध किया गया था। उन्हें सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष एवं सूचना सहायक के रूप में पदनामित किया गया था। उनका वेतनमान रुपये 6500–10,500 निर्धारित किया गया, जो कि संशोधित वेतनमान था। यह निर्विवाद है कि उनके मामले पर पाँचवीं वेतन पुनरीक्षण आयोग द्वारा विचार नहीं किया गया। यदि किसी उच्च श्रेणी में वेतनमान को शैक्षणिक योग्यता एवं अन्य सुसंगत तथ्यों को ध्यान में रखते हुए किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा पुनः निर्धारित किया गया हो, तो उस पर आपत्ति नहीं की जा सकती। यह स्वीकार किया गया है कि भारत संघ का यह उत्तरदायित्व था कि वह उन्हें पृथक वेतनमान में रखने के लिए उचित कारण प्रस्तुत करे — और ऐसा किया गया है। जैसा कि हम पहले ही उल्लेख कर चुके हैं, न केवल आवश्यक शैक्षणिक योग्यताएँ भिन्न हैं, बल्कि कार्य की प्रकृति भी भिन्न है। संविधान के अनुच्छेद 39(घ) तथा अनुच्छेद 14 को, अन्य बातों के साथ, इस आधार पर लागू किया जाना चाहिए कि समानता का सिद्धांत केवल उन व्यक्तियों पर लागू होता है जो सभी दृष्टियों से समान स्थिति में हैं।“

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

इस सिद्धांत को विभिन्न तथ्यों की परिस्थितियों में कैसे लागू किया जाए, यही वास्तविक प्रश्न है। जहाँ इस न्यायालय ने उक्त सिद्धांत को लागू करने से इंकार कर दिया, क्योंकि याचिकाकर्ता के पास आवश्यक शैक्षणिक योग्यताएँ नहीं थीं, वहीं भारत संघ विरुद्ध दिनेशन के.के. के मामले में यह लागू किया गया कि इस सिद्धांत के अनुप्रयोग का निर्धारण विशेषज्ञ निकाय द्वारा किया जाना चाहिए। जैसा कि दिनेशन के.के. के मामले में (एससीसी पृष्ठ 592–93, पैरा 16) अवधारित किया गया:

"16. हाल ही में हरियाणा राज्य विरुद्ध चरणजीत सिंह के एक निर्णय में, तीन न्यायाधीशों की पीठ ने हरियाणा राज्य विरुद्ध जसमेर सिंह, तिलक

राज, ओडिशा कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय विरुद्ध मनोज के. मोहंती तथा पश्चिम बंगाल सरकार विरुद्ध तरुण के. रॉय में इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हुए यह पुनः दोहराया है कि 'समान कार्य के लिए समान वेतन' का सिद्धांत कोई अमूर्त सिद्धांत नहीं है, बल्कि यह एक ऐसा सिद्धांत है जिसे विधिक रूप से न्यायालय में लागू किया जा सकता है। अन्य बातों के साथ यह भी अवधारित किया गया कि समान वेतन केवल समान मूल्य के समान कार्य के लिए ही दिया जा सकता है और यह सिद्धांत हर मामले में गुणनात्मक रूप से लागू नहीं किया जा सकता। अनुच्छेद 14 के अधीन व्यक्तियों की गुणों या विशेषताओं के आधार पर युक्तियुक्त वर्गीकरण की अनुमति है, जिनकी एक साथ नियुक्ति हुई है, उन व्यक्तियों के विरुद्ध जो उस वर्गीकरण से बाहर हैं। निश्चित रूप से, ऐसे गुणों या विशेषताओं का उस उद्देश्य से तार्किक संबंध होना चाहिए जिसे प्राप्त करना वांछित है। समान कार्य के लिए समान वेतन के सिद्धांत को लागू न करने वाले अनेक कारकों का उल्लेख करते हुए यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि चूंकि इस सिद्धांत के अनुप्रयोग हेतु किसी कार्य के विभिन्न पहलुओं पर विचार आवश्यक होता है, इसलिए सामान्यतः इस सिद्धांत की सुसंगतता का मूल्यांकन एवं निर्धारण किसी विशेषज्ञ निकाय द्वारा किया जाना चाहिए, और न्यायालय को तब तक हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए जब तक यह संतुष्टि न हो जाए कि उस दावे के समर्थन में आवश्यक सामग्री एवं साक्ष्य अभिलेख पर उपलब्ध हैं, और यह कि समान कार्य समान गुणवत्ता वाला है तथा अन्य सभी सुसंगत कारक पूर्ण रूप से संतुष्ट किए गए हैं।"

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

19. हस्तगत मामले के तथ्यों पर विधि के सुस्थापित सिद्धांतों को लागू करने पर यह स्पष्ट होता है कि याचिकाकर्ता को, कृषि विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के शिक्षकों अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) द्वारा मान्यता प्राप्त और संबद्ध अन्य विश्वविद्यालयों/महाविद्यालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों के समान सेवानिवृत्ति आयु के संबंध में केवल कुछ ज्ञापनों, अधिसूचनाओं अथवा पत्रों (पूर्वोक्त) के आधार पर कोई समानता प्राप्त करने का हकदार नहीं है।

20. परिणामस्वरूप, रिट याचिका असफल होती है और खारिज की जाती है। वाद-व्यय के विषय में कोई आदेश नहीं दिया जाता है।

सही/-

सतीश के. अग्निहोत्री

न्यायमूर्ति

सही/-

प्रशांत कुमार मिश्रा

न्यायमूर्ति

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By Prashant Kumar